यौगिक संध्या

ओ३म्

-भगवन्त मुनि

यौगिक संध्या

ब्रह्म यज्ञ में भावनात्मक वैदिक संध्या से साक्षात्कार की यौगिक विधि

- भगवन्त सिंह कपूर

यौगिक संध्या
YOGIK SANDHYA

लेखक एवं प्रकाशक : भगवन्त सिंह कपूर
'प्रकाश भवन'
पंजाबी कालोनी
नासिक रोड - 422101
(महाराष्ट्र)
फोन : 0253-2468777

संख्या : 1000 (एक हजार)

मूल्य : रु० 11/- मात्र

मुद्रक : अमर ज्योति प्रेस
सदर बाजार, झाँसी (उ०प्र०)
फोन -0517-2470223/2370223
मोबाइल - 9415030917

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं
ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत
ब्रह्मलोकम्।।

(अथर्व० १६-७१-१)
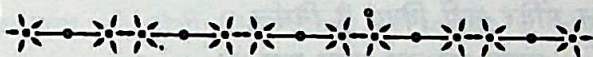
स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक-पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु-बल, सन्तति-पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

साधना का गीत

जाग गये अब सोना क्या रे
जाग गये अब सोना क्या रे
जो नर तन देवन को दुर्लभ
सो पाया फिर रोना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
हीरा हाथ अमोलक पाया,
काँच भाव से खोना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
मन मंदिर नहीं किया है निर्मल,
बाहर का तन धोना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
जब वैराग्य ज्ञान घिर आया,
तब चाँदी और सोना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
दारा सुत्तन भुवन में घिर के,
भार सभी का ढोना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
ईश्वर से कर नेह बावरे,
इन्द्रियों के वश होना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।।
ओं नाम का सिमरण करले,
अंत समय में टोहना क्या रे।
जाग गये अब सोना क्या रे।। जाग गये

यौगिक संध्या का एक परिचय

सिद्धियाँ प्राप्त योगी दयानन्द ने जब गुरू विरजानन्द जी से वेद-ज्ञान प्राप्त किया तब स्वयं को मोक्ष के द्वार पर खड़ा पाया। वे तब दया के सागर एवं आनन्द के भण्डार बन गए। दिव्य दयानन्द ने शुद्ध वैदिक योगी बनकर जब सम्प्रज्ञात समाधि में संसारी लोगों को सुख के स्थान पर प्रत्यक्ष दुःख-सागर में पीड़ित देखा तो अपने स्वयं के मोक्ष की चिंता त्याग, हम पथ-च्युत पीड़ित संसारियों का मार्ग प्रशस्त करने हेतुं, दयार्द्र हो परमार्थ में लग गए। सम्भवतः तभी उन्होंने आर्य-समाज के नौवें नियम की कल्पना की होगी कि "अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहकर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए" जिसे उन्होंने स्वयं अपने जीवन में धारण कर, प्रमाणित भी कर दिखाया। हम पीड़ित संसारियों अर्थात् मानव मात्र के मार्ग-दर्शनार्थ, वेद-मन्थन कर, स्वानुभूत सिद्ध कर बताया कि पातंजलि का राजयोग ही मोक्ष की सर्वश्रेष्ठ उपासना विधि है। जिसे उन्होंने "ब्रह्मयज्ञ" नाम से सुशोभित किया।

नित्य पालनार्थ वैदिक पंच-महायज्ञों में से व्यक्तिगत उन्नति का एवं मोक्षमार्ग की उपासना विधि का यह ब्रह्मयज्ञ ही एकमात्र यज्ञ बताया। ब्रह्मयज्ञ में योग-साधना को न्यून से न्यून चार घड़ी (२३ मिनट की एक घड़ी तो अनुमानतः डेढ़ घण्टा) करके सूर्योदय से पूर्व समाप्त करने का आदेश भी दिया। इस ब्रह्म-यज्ञ में प्रभु की उपासना या प्रभु-मिलन के योग का विधान "वैदिक-संध्या" बताया। अर्थात् दिव्य-दृष्टा

योगी दयानन्द ने २०,३४६ वेदमंत्रों में से चुनकर मात्र १८ मंत्रमणियों की माला ''वैदिक- संध्या'' में योग निश्चित निर्दिष्ट किया है। हमारा दुर्भाग्य है कि प्रस्तुत संध्या एवं आर्य-समाज की स्थापना के बाद विश्वगुरू अपने शेष जीवन के अल्पकाल में इसे स्पष्ट नहीं कर सके और हम आज १२५ वर्षो से उस यौगिक मोतियों की माला रूपी संध्या को मात्र कुछ मिनटों में ही तोता-रटन्त के समान मंत्रपाठ के उच्चारण की माला फेरने में लगे हैं।

बहुत प्रयत्न के बाद पाया कि युग-प्रवर्तक वेदोद्धारक दयानन्द ने संध्या में भिन्न-भिन्न शीर्षकों में यह रहस्य इंगित किया है। बहुधा वेदमंत्रों में आलंकारिक भाषा में ''भावना'' बताई है। तभी मंत्रों के शब्दार्थो के स्थान पर आलंकारिक भावों के अनुरूप योगी ने शीर्षक देकर तद्नुसार योग के अष्टांगों पर चढ़ते-बढ़ते, संध्या करते-करते समाधि तक पहुँचने का निर्देशन किया है। प्रातः स्मरणीय दिव्य दयानन्द ने हम आर्यो अथवा मानव मात्र को ऐसा स्वर्णिम कल्याणकारी मोक्षमार्ग बताया कि जंगलों, कन्दराओं या पहाड़ों पर न जाकर स्वअभ्यास से, प्रतिदिन संध्या-मंत्रों के साथ ही मन में शीर्षक निर्दिष्ट भावना बनाते जावें और नित्यप्रति समाधि में ब्रह्म-साक्षात्कार की झलक ''आनन्दानुभूति'' प्राप्त कर सके।

इस रहस्योदघाटन से जिस विधि का विकास कर पाया हूँ, वह इतनी सरल एवं भावपूर्ण बन गई है कि प्रत्येक मोक्षमार्गी मुमुक्षु, साधक बनकर, दैनिक संध्या के स्वअभ्यास से किसी भी आडम्बर या अंधविश्वास रहित, उपासना में

प्रभु-मिलन का सहज योग कर सकता है। इसके स्वयं के अनुभव एवं अभ्यास के बाद कई स्थानों पर प्रयोग भी किये और बहुत ही सफल प्रतिसाद मिला। आर्य समाजी तो प्रभावित हुए ही, अन्य लोग भी आकर्षित हुए और पूछा कि ऐसी यौगिक संध्या आर्य-समाज में है तो हम अवश्य सीखेंगे और समाज में आयेंगे। ६-७ दिवसों के अल्प शिविर के अभ्यास से प्रत्येक विद्यार्थी, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, स्त्री-पुरुष, व्यापारी, व्यवसायी और वानप्रस्थी, साधु-सन्यासी इसे सीख सकते हैं। बाद में सतत् स्वअभ्यास से आजीवन लाभान्वित होते रह सकते हैं।

लिखित रूप में पढ़कर उतना स्पष्ट समझा नही जा सकता जितना प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर अथवा समझकर सीखा जा सकता है तदर्थ ५-७ दिवसों के शिविरों का स्थान-स्थान पर आयोजन हो तभी हम ऋषि ऋण से मुक्त हो सकेंगे।

जीवन की संध्या में "अनुभूत संध्या-सिद्धि" को मैं प्रदर्शित करके सभी को समझा सकूँ, जो प्रसाद स्वयं चखा है जन-जन को भी चखा सकूँ, यह अभिलाषा है ताकि प्रभु से संयोग की ऐसी स्वर्णिम विधि "संध्या से योग" द्वारा सभी लाभान्वित हो सकें और अपने मानव चोले के लक्ष्य मोक्ष मार्ग के पथिक बन सकें।

प्रभु हम सभी को ऐसी प्रेरणा दे कि इस देव दयानन्द प्रदत्त वेद मंत्रों की मणि माला वैदिक संध्या से ब्रह्म यज्ञ में प्रभु योग करने की विधि से आजीवन कभी विमुख न हों।

-: ओ३म:-

भूमिका

ब्रह्ममयज्ञ में शारीरिक क्रियाएँ तो हास्यास्पद ही हैं। पंच महाभूत निर्मित यह शरीर तो मात्र प्रकृति के शब्द स्पर्श, रूप, रस गंधादि तन्मांत्राओं का उपभोग ही कर संकता है। अपने चोले के स्वभावानुसार इच्छा-द्वेष, ज्ञान-प्रयत्न एवं सुख-दुःख ही की अनुभूति कर सकता है इस शरीर के किसी भी अवयव में परम-आत्मानन्द पाने की शक्ति नहीं है।

परमात्मा का मित्र, पुत्र, सखा अथवा भाई तो आत्मा है शरीर नहीं। ब्रह्मयज्ञ आत्मा और परमात्मा के मिलन का यज्ञ है। यह आत्मा का विषय है शरीर का नहीं। अपने अन्दर ही ध्यानस्थ आत्मा की भावनात्मक क्रियाओं से ही तो हम परमात्मा से मिल, बोल सकते हैं। वहीं परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए शरीर का स्थिर आसन, एकान्त स्थान, ब्रह्ममूहूर्त और अंतर्ध्यानस्थ साधना में भावनात्मक क्रियाएँ ही इस यज्ञ में सहायक हो सकती हैं। स्मरण रहे कि शरीर साधन मात्र है साध्य नहीं? साध्य तो आत्मा का आत्म स्वरूप से अवस्थान एवं परमात्मा से संयोग है।

ब्रह्मयज्ञ में नित्य करणीय, वेद-मंत्रो द्वारा प्रणीत संध्या ऐसे ही योग मार्ग को प्रशस्त करती हैं। वेद-मंत्रो में

शब्दार्थों की अपेक्षा अधिकतर आलंकारिक भावनाओं से स्तुति, प्रार्थना और उपासना का आदेश-निर्देश है। संध्या के वेद-मंत्रों के शीर्षकों में इन्गित भावना से बढ़ते जाने से ही योग के अष्टांगों पर आरोहण एवं समाधि प्राप्ति सरल बन जाता है। भावनात्मक क्रियाओं पर मन से बढ़ते; मन को व्यस्त रखकर, हमारा योग-मार्ग, यम-नियम से समाधि पर्यन्त प्रशस्त हो जाता है। यही ब्रह्म-यज्ञ की यौगिक साधना है। मंत्र अथवा मंत्रार्थ तो मात्र अष्टांगों पर बढ़ने का मार्ग दर्शन ही करते हैं। इनका पाठ अथवा बोलना तो साधना की एकाग्रता में बाधा बनेगी, ध्यान बोलने पर चला जायेगा।

एक बार ऐसी भावनात्मक संध्या विधि का प्रत्यक्षीकरण करने के बाद, मंत्रों में निहित भावना को ''संध्या से योग प्रकाश'' पुस्तिका से समझकर, इस ''यौगिक संध्या'' को अपनाकर हम सभी स्वयं योग-साधना के द्वारा ब्रह्म-यज्ञ कर सकते हैं जीवन में प्रतिदिन इसी विधि से यम-नियम एवं संकल्पों को दुहराते हुए अपने सभी दोष-विकार एवं दुर्गुणों को दूर करते हुए चित्त-वृत्ति-निरोध एवं निर्विकार मनः द्वारा स्थिर चित्त तो अवश्य ही कर लेंगे। साधना में रत कभी न कभी सफलता पर पहुँच कर आत्म-जाग्रति भी कर सकेंगे। इस प्रकार योग-साधना के इस ब्रह्मयज्ञ में समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाने पर अपनी जाग्रत आत्मा से ब्रह्म-साक्षात्कार की अनुभूति भी प्राप्त कर सकेंगे जो हम आत्माओं का एवं प्राप्त इस चोले का अभीष्ट, लक्ष्य है।

स्वानुभूत एवं सीखने वालों की अनुभूतियों, सफलताओं एवं सूचनाओं के आधार पर आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास हुआ है कि वैदिक ''शुद्ध-ज्ञान'' से प्रणीत, देव दयानन्द द्वारा प्रस्तुत यह मणिमाला ''संध्या'' को शुद्ध रीति की आंतरिक क्रियाओं द्वारा ''शुद्ध-कर्म'' की साधना से योग कर हम सभी ''शुद्ध-उपासना'' अर्थात् प्रभु-सान्निध्य भी प्राप्त कर सकते हैं। इस आशा एवं पूर्ण विश्वास के साथ यह ''यौगिक संध्या'' अर्थात् ''ब्रह्मयज्ञ में भावनात्मक वैदिक संध्या से साक्षात्कार की यौगिक विधि'' पुस्तिका प्रस्तुत है।

अंत में उस महान् योगी महर्षि दयानन्द का आभार प्रगट करना नहीं भूलूँगा जिनक़ी कृपा से यह उपलब्धि प्राप्त हो सकी। इस पुस्तिका के प्रस्तुतिकरण के लिए वैदिक विद्वानों ऋषियों-मुनियों एवं आर्य-समाज का भी अति आभारी हूँ जिनका इस संध्या से योग विधि को समझने में सहयोग प्राप्त हुआ। सभी पर प्रभु कृपा की कामना के साथः

साधक
भगवन्त मुनि

-: ओ३मः-

ब्रह्म-यज्ञ की संध्या से यौगिक विधि

(१) निश्चित स्थान अथवा स्वच्छ, शुद्ध मन्दवायु वाले स्थान पर, सूर्योदय से डेढ़ घण्टा पूर्व अथवा निश्चित समय पर प्रतिदिन नियमित करें।

(२) कुशा, सूत अथवा ऊनी आसन पर, ३'' से ६'' ऊँची गद्दी नितम्बों के नीचे रखकर बैठें। इससे अधिक समय तक स्थिर बैठा जा सकता है और पैर सुन्न नहीं होते। पद्मासन सुखासन या जिस प्रकार भी न्यून से न्यून एक घण्टा स्थिर बैठ सकें, पूर्वाविमुख बैठे। पीठ सीधी रहे, अन्यथा पीठ के झुके भाग के कक्ष पर ध्यान एवं मन भागता रहेगा।

(३) श्वास-प्रश्वास की क्रिया से नासिका के दाहिने नथुने सूर्य-स्वर एवं बायें नथुने चन्द्र-स्वर दोनों स्वरों को समान चला लेवें।

(४) अनुलोम-विलोम अथवा नाड़ी-शोधन के निम्नांकित तीनों भागों द्वारा श्वास प्रश्वास/निःश्वास कर रक्त-संचार को व्यवस्थित कर लेवें।

(क) पहले एक स्वर फिर दूसरे स्वर से श्वास-प्रश्वास दस-दस बार करें।

(ख) एक स्वर से लेना दूसरे से छोड़ना दस बार करके, दूसरे से लेना पहले से छोड़ना भी दस बार करें।

(ग) एक से श्वास लेकर दूसरे से छोड़ना थोड़ा बाहर रूककर छोड़ने वाले दूसरे स्वर से लेकर पहले से छोड़ना, बाहर रूककर पहले से लेना दूसरे से छोड़ना भी १० बार करें। अगर कुछ ठण्डा मौसम हो या सर्दी लग रही हो तो इस तीसरी क्रिया को जल्दी-जल्दी १०-१५ बार करने से स्फूर्ति आ जाती है और रक्त संचार व्यवस्थित हो जाता है।

(५) हाथों की निर्दिष्ट मुद्रा बनावें इस भावना के साथ कि कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा रूपी तीनों अंगुलियाँ सत-रज-तम तीनों गुणों को इस समय, तर्जनी रूपी आत्मा से अलग कर रहे हैं और तर्जनी अंगुली अर्थात् आत्मा को झुकाकर, परमात्मा रूपी अंगूठे के अंतर्गत कर रहे हैं। यह मुद्रा मात्र स्मरणार्थ है। इस मुद्रा से दोनों हाथों को घुटने पर सीधा रख लेवें। आनन्दकन्द से मिलने की साधना में चेहरे पर मुस्कराहट अनिवार्य है। अगर मुस्कराहट हट गई तो समझना कि मन भी कहीं अन्यत्र भाग गया, सावधान रहें।

(६) तीन बाह्यवृत्ति प्राणायाम के साथ, प्रश्वास के समय ''ओ३म्'' नाद तीन बार करना है।

विधि: श्वास बाहर फेंककर यथाशक्ति बाहर ही रोकें, न रुक सकने पर धीरे से श्वास अन्दर लेवें और ''ओ३म्'' नाद आरम्भ कर देवें। कुछ क्षण बाद मुँह

बन्द कर दांतों को जोर से भींचते हुए "म" का नाक से गुंजान प्रश्वास के अंत तक करते रहें। प्रश्वास समाप्त होने पर "बाह्यवृत्ति" बाहर ही यथाशक्ति रुकें। न रुक सकें तब धीरे श्वास भरकर अगला नाद प्रारम्भ करें-ध्यान में ओ३म् अथवा महाव्याहूतियों का स्मरण तीन बार इस प्रकार करें

(अ) ओ ऽऽ म ऽऽऽ । सर्व व्यापक प्रभु के सर्वश्रेष्ठ नाम ओ३म् का ध्यान में स्मरण

(ब) ओं ऽऽ म ऽऽऽऽ । ओ३म् (प्रणव) का अर्थ तीन अनादि सत्य परमात्मा, आत्मा और प्रकृति का ध्यान में स्मरण

अथवा

महाव्यहर्तियों भू-र्भुवः स्वः के अर्थ उत्पादक, पालक, संहारक का ध्यान में स्मरण।

(स) ओ ऽऽ म ऽऽऽऽ। ओ३म् (प्रणव) के उपरोक्त तीन सत्य अथवा महाव्यहृतियों के गुणात्मक तीन रूप :- ब्रह्म, विष्णु, महेश अथवा G.O.D.

G - जेनरेटर, O - ओपरेटर, D - डिस्ट्रोयर को अपने में धारण करना अर्थात् "उसमें" अपने को ओत-प्रोत की अनुभूति होना।

सत्यार्थ में माला फेरने की अथवा प्रणव जाप की भी यही सही शुद्ध एवं वैदिक विधि है। हाथ में माला, मन अन्यत्र और मुँह में नाम, जाप की विधि नहीं है।

(७) गायत्री मंत्र के तीन भागों:- १. तत्सवितुर्वरेण्यं, २. भर्गो देवस्य धीमहि, ३. धियो यो नः प्रचोदयात्।

में से प्रथम भाग की भावना के साथ ''शिखाबन्धन'' अर्थात् बिखरे बालों या विचारों की गांठ बांधकर इस संध्या के समय एक तरफ रख रहे हैं। मन खाली कर प्रभु हम तुम्हें वरण कर साधना में बैठ रहे हैं। इस भावना के साथ पहला भाग तीन बार बोल कर, सम्पूर्ण गायत्री मंत्र बोलें:-

मंत्र:- ओ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्य
तत्सवितुर्वरेण्यं
तत्सवितुर्वरेण्यं.....

भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचो दयात्।।

स्मरणार्थ- आरम्भ में जब मंत्र याद न हों तब पढ़ कर बोलें, इसके बाद कुछ काल बाद बिना देखे उच्चारण करें और जब साधना का अभ्यास हो जावे तब मन में ही बोलें क्योंकि मुँह से बोलने पर भी ध्यान भंग हो जाता है, बोलने की क्रिया पर मन चला जाता है।

(८) शन्नो देवी मंत्र के तीन भागों- १. ओं शन्नो देवीरभिष्टय, २. आपो भवन्तु पीतये,
३. शंयोरभिस्त्र्वन्तु नः।।
मे से पहले भाग से तीन व्रत, तीन बार मन में बोलकर लेने है:-

१. ओं शन्नों देवीरभीष्टय - में तपस्या, साधना अवश्य करूँगा।

२. ओं शन्नो देवरिभीष्टय - मैं नियमित समय एवं स्थान पर नित्यप्रति साधना करूँगा।

३. ओं शन्नो देवीरभिष्टय - मैं सतत, निरन्तर आजीवन यह साधना करता रहूँगा।

''व्रतों के पालन के संकल्प के साथ प्रभो! मैं आपके पास उपस्थित हुआ हूँ'' अन्दर ही मन में मंत्र के शेष दो भाग बोलें -

आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः।।

(६) अन्दर ही काल्पनिक आवाज आती है ''वत्स ठीक है परन्तु साधना की नींव तो यम-नियम हैं जो इस प्रकार हैं

''अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह यमाः''

और

''शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधनानि नियमाः'' वत्स सर्व प्रथम अपनी इन्द्रियों अंगों से यथाशक्ति इन दस यम-नियमों को पालन करवा तभी साधना सफल होगी।''

साधक-मन ही मन-''आज्ञा शिरोधार्य प्रभो''

(१०) हम इन्द्रिय स्पर्श मंत्र से एक-एक इन्द्रिय का नाम लेकर उससे कौन-कौन सा यम नियम पालन करवाना

है, ऐसा इन्द्रियों को आदेश देकर संकल्प करते जाते हैं-

ओं वाक् वाक् - मुख से-सत्य, संतोष, शौच, ब्रह्ममचर्य और अंहिसा

ओं प्राणः प्राणः- नासिका से-तप, शौच और संतोष

ओं चक्षुः चक्षुः- आँखों से - अस्तेय, अहिंसा, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

ओं श्रोत्रं श्रोत्रं- कानों से-सत्य, शौच, संतोष, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान।

ओं नाभि- पेट से-शौच, तप, संतोष, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और ईश्वरप्रणिधान।

ओं हृदयं- हृदय से - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान अर्थात सभी दस यम-नियम।

ओं कण्ठः- कण्ठ से-सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान।

ओं शिरः- शिंर, बुद्धि से - धैर्य, तप, संतोष, स्वाध्याय, सत्य, अहिंसा आदि सभी दस यम-नियम का स्वयं पालन कर सारे शरीर से करवाना।

ओं बाहुभ्यां यशोबलम् - इस प्रकार जो भी यशोबलम्
प्राप्त हुआ प्रभु आपकी ही कृपा
से हुआ।

ओं करतल कर पृष्ठे - इसलिए सभी आपके
समर्पण है प्रभु।

(११) मार्जन मंत्र- विपश्यना-विशेष रूप से अन्दर ही अन्दर अंग-अंग को मांज कर देखना-सारे शरीर में पहुँचने के लिए मंत्र में रीढ़ की हड्डी ''मेरूदण्ड'' के सात स्थानों (कक्षों) को चुना गया है। शिर की बुद्धि में मेरूदण्ड की कसेरूकाओं के अन्दर के ज्ञान-तंत्र के माध्यम से ही सम्पूर्ण शरीर का नियंत्रण होता है। सातों स्थानों ''कक्षों'' चक्रों से जो संवेदनशील नाड़ियाँ अथवा संदेशवाहक स्नायुकायें बनकर सम्बन्धित अंगों से आती जाती है उन्हीं के माध्यम से हम एक-एक चक्र पर एक-एक प्रभु शक्ति के सहारे जाकर निरीक्षण करते हैं, वहाँ के प्रत्येक अंग-प्रत्यंगों को मांजकर देखते हैं कि उनमें आज इस समय तक कितना कल्मष बाकी है, कितना यम नियमों का इनसे पालन हुआ कितना नहीं। एक-एक स्थान का मंत्र-पाठ बोलकर किंचित रूककर वहाँ के अंगों को ''विपश्यना'' विधि से निरीक्षण करना तब अगले कक्ष अथवा चक्र का नाम बोलकर उस कक्ष पर जाना। मंत्र में वर्णित सात कक्षों की सात प्रभु शक्तियाँ, उनका शरीर में स्थान एवं यौगिक भाषा मे

उस कक्ष के चक्र का नाम इस प्रकार है:-

१. ओं भू : पुनातु शिरसि - मेरूदण्ड के ऊपर शिर का भाग-सहस्त्रार चक्र
२. ओं भुवः पुनातु नेत्रयोंः - नेत्रों के पीछे मेरूदण्ड का शिरा - आज्ञा चक्र
३. ओं स्वः पुनातु कण्ठे - कण्ठ के पीछे मेरूदण्ड में - विशुद्ध चक्र
४. ओं महः पुनातु हृदय - हृदय के पीछे मेरूदण्ड में - अनाहृत चक्र
५. ओं जनः पुनातु नाभ्याम् - नाभी के पीछे मेरूदण्ड में - मणिपुर चक्र
६. ओं तपः पुनातु पाद्योः - लिंग के पीछे मेरूदण्ड में - स्वाधिष्ठान चक्र
७. ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि - गुदा के पास मेरूदण्ड के पुँछ में - मूलाधार चक्र

इस प्रकार जब सारा शरीर मांजकर देख लिया तो पुनः शिर में आ जाते हैं और सारा शरीर एवं "आसन" स्थिर हो जाता है और हम इस मंत्र के अंत में बोलते हैं।

८ ओं खं ब्रह्मम पुनातु सर्वत्र - कहकर शिर में ध्यानस्थ हम इन इन्द्रियों की कल्मष को इनसे सूक्ष्म शक्ति प्राण द्वारा स्वच्छ करने के प्राणायाम करते हैं। ध्यान शिर में चेहरे पर मुस्कुराहट और आसन स्थिर।

(१२) प्राणायाम मंत्रः :- प्राण भरकर हमें अन्दर अधिक समय रूककर स्वच्छता करनी है और प्रभु से शक्ति प्राप्त करनी है तो अन्दर अधिक समय रूकने का ''आभ्यान्तर वृत्ति'' प्राणायाम करेंगे। महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ बार प्राणायाम करने का विधान है। दोनों प्रकार की विधि यहाँ वर्णित है:-

(अ) तीन प्राणायामों से अंगों-प्रत्यंगों की वृत्ति निरोध करने की विधिः-

पिछले मार्जन मंत्र में विपश्यना के लिए वर्णित सात कक्षों के नामों के पूर्व जिस प्रभु शक्ति का सहारा लिया गया है, उन्हीं सात शक्तियों की सहायता से प्राणायाम में हम उन्हीं सात स्थानों-कक्षों पर क्रमशः पहुँच कर सम्बन्धित अंगों-प्रत्यंगों एवं कक्ष के दोष-कल्मष को स्वच्छ करते हैं। अपने अल्प ज्ञान-शक्ति की ज्योति से निरीक्षण कर प्रत्येक कक्ष के लिए इन्गित प्रभु-शक्ति अथवा प्रभु-ज्ञान प्राप्त करते हैं।

विधिः- पहला प्राणायाम-प्रश्वास सम्पूर्ण बाहर फेंककर धीरे-धीरे प्राणवायु अन्दर भरना। अन्दर रोककर आभ्यान्तर कुम्भक में, प्राणायाम मंत्र के एक-एक भाग से एक-एक कक्ष पर पहुँचकर, अन्दर ही मंत्र जाप करते हैं-

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओंमहः। ओंजनः। ओंतपः। ओं सत्यम्।।

प्रत्येक कक्ष एवं सम्बन्धित अंगों की कल्मष, दोष, वृत्ति आदि को स्वच्छ कर, झाड़ू लगाकर ऊपर सहस्त्रार से नीचे मूलाधार तक अर्थात् सारे शरीर को शुद्ध करना, प्रश्वास के साथ कचरा बाहर फेंकना।

दूसरा प्राणायाम- पुनः प्राणवायु को श्वास से सम्पूर्ण भरकर अन्दर आभ्यान्तर कुम्भक में मंत्र जाप के साथ

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।।

ऊपर सहस्त्रार से नीचे मूलाधार तक प्रत्येक कक्ष में अपनी अल्प ज्ञान-ज्योति का प्रतीक एक-एक दीपक जलाना और प्रभु से याचना करना कि जितना हो सका उतना प्रकाशित किया प्रभु अब आप अपनी प्रेरणा से इन कक्षों को मंत्र में इन्गित अपनी शक्ति के ज्ञान-प्रकाश से आभायुक्त कर दें। प्रश्वास।

तीसरे प्रणायाम में - प्राण अन्दर भर कर आभ्यान्तर कुम्भक में रुके, नीचे मूलाधार से उल्टे क्रम से प्रत्येक कक्ष में देखें प्रभु ने सचमुच अपनी ज्ञानज्योति का प्रकाश भर दिया है। प्रत्येक कक्ष के मेरे अल्प, मध्यम, ज्ञान-प्रकाश के दीपक का प्रकाश प्रभु-शक्ति रूपी ज्ञान ज्योति से जगमगा उठा। आभामय रंगीन प्रकाश, नीचे मूलाधार से ऊपर सहस्त्रकर तक प्रत्येक कक्ष एवं सम्बन्धित अंग-प्रत्यंगों को, प्रकाशित कर रहे हैं। रंग एवं अनुभूति का दर्शन इस प्रकार करें:-

(१) मूलाधार - ओं सत्यम्ः - सत्य का शुभ्र, स्वच्छ, पवित्रता का सफेद स्फटिक प्रकाश-पुंज।

(२) स्वाधिष्ठान - ओं तपः - तपस्या का पीला आभायुक्त सुनहरी प्रकाश-पुंज।

(३) मणिपुर - ओं जनः - ऋषियों, तपस्वियों, साधुओं के ज्ञान एवं जनन शक्ति का गेरूआ।

(४) अनाहृत - ओं महः - महाशक्ति सृष्टि के संचालक, शरीर में हृदय रक्त संचारक का रंग गाढ़ा लाल आभायुक्त।

(५) विशुद्ध - ओं स्वः - संहारक, दुष्टता के दमनकारी यम का रंग गाढ़ा बैंगनी आभायुक्त

(६) आज्ञा - ओं भुवः - पालक, समुद्र के समान अथाह जल का नीला आभामय रंग।

(७) सहस्त्रार - ओं भूः - रचयिता, सर्वाधार सृष्टिकर्ता की सृष्टि आसमान का हल्का नीला आभायुक्त आसमान ही ब्रह्मरंध्र में, शिर में ध्यानस्थ देख रहे हैं।

(ब) इक्कीस प्राणायामों में कक्षों, अंगों-प्रत्यंगों की वृत्ति का निरोध करने की विधिः-

अगर समय हो और साधना में निखार लाना हो तो इक्कीस प्राणायामों की यह विधि ही करनी चाहिए। उपरोक्त तीन प्राणायाम विधि में वर्णित स्वच्छता, अपनी ज्योति जलाना एवं प्रभु का ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करना, इन तीनों क्रियाओं में से प्रत्येक क्रिया को सात-सात बार प्रत्येक कक्ष

के लिये अलग-अलग प्राणायामों से करना।

अर्थात् तीन क्रियाएँ सात-सात बार 7x3=21 प्राणायाम करना।

पहले स्वच्छता के सात प्राणयाम-

श्वास भरकर, आभ्यान्तर कुम्भक में, सहस्त्रार चक्र, शिर में मंत्र जाप करते, इस कक्ष एवं अंगों की कल्मष झाड़ना और प्रश्वास से बाहर फेंकना। क्रमशः अगले चक्रों में मूलाधार तक प्रत्येक चक्र पर एक एक प्राणायाम के आभ्यान्तर कुम्भक में एक-एक कक्ष एवं अंग-प्रत्यंगों की कल्मष, वृत्ति झाड़कर प्रश्वास से कचरा फेंकना। सातवें प्राणायाम के अंत में मूलाधार पर गुदा संकुचित करते ही डंक लगने के समान हम सहस्त्रार पर पहुँच जाते हैं।

दूसरे ज्योति जलाने के सात प्राणायाम-

आठवें से अगले सात प्राणायामों में ऊपर सहस्त्रार से सीधे क्रम से नीचे मूलाधार तक, प्रत्येक चक्र पर एक-एक प्राणायाम करें। श्वास भरकर आभ्यान्तर कुम्भक में अन्दर रुके होने पर, प्रत्येक कक्ष को अपने अल्प ज्ञान ज्योति के एक-एक दीपक जलाकर प्रकाशित करना। मंत्र में वर्णित प्रभु-शक्ति का ज्ञान-प्रकाश पाने की याचना करते हुए प्रश्वास से बाहर आ जाना। इस बार चौदहवें प्राणायाम के अंत में नीचे मूलाधार पर ही ध्यानस्थ रुके रहेंगे।

तीसरे प्रभु ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करने के सात प्राणायाम-

पन्द्रहवें से अगले सात प्राणायामों में प्रत्येक आभ्यान्तर

कुम्भक में अन्दर प्राण रुके रहने पर, मूलाधार नीचे से उल्टे क्रम में ऊपर सहस्त्रार तक प्रत्येक चक्र पर, एक-एक प्राणायाम करना, प्रत्येक कक्ष में देखना कि प्रभु ने सच्चमुच अपनी ज्ञानज्योति का आभामय प्रकाश पहुंचाकर कक्षों को बलयुक्त रंगीन आभायुक्त कर दिया है- उपरोक्त तीन प्राणायाम की विधि में वर्णित प्रत्येक कक्ष के रंगों को ही अनुभूत करेंगे।

इक्कीस अथवा तीन प्राणायामों के अंतिम प्राणायाम के समय हम सहस्त्रार में अथवा ब्रह्मरन्ध्र में ध्यानस्थ प्रभु की सृष्टि का दृश्य आसमानी रंग के आसमान को देख रहे होते हैं।

श्वास प्रश्वास सामान्य होने तक वहीं ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान लगा रहे, मन खाली न रहने पावे इसलिए वैसी ही भावना बनाये रखने के लिए महर्षि दयानन्द जी ने बहुत ही सुन्दर सुविचारित क्रम से 'अघमर्षण' घमण्ड चूर करने के मंत्र रख दिये हैं। ध्यानस्थ हम आसमान का अवलोकन कर रहे थे। आसमान में ही सृष्टि के विराट रूप के मंत्रों से योग के अगले अंग प्रत्याहार में व्यस्त होते हैं-

१३. प्रत्याहार का पहला भाग-

अघमर्षण मंत्र :

ओं ऋृतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत् ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।।१।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत् ।

अहोरात्रणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।२।।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।३।।

प्राणायाम के अंत में ब्रह्मरन्ध्र शिर के शिखर पर ध्यानस्थ हम आसमानी ''प्रभु-प्रकाश'' से आभामय आकाश का अवलोकन कर रहे हैं। वहीं इन मंत्रों में वर्णित उस महान् रचयिता की आश्चर्यजनक रचना का दृश्य अर्थात् सारे ब्रह्माण्ड को अपने ब्रह्मरंध्र में देखते हैं। तारे, चांद, ग्रह एवं सूर्य युक्त अनेक सौरमण्डल उनके सुसंचालन से रात-दिन, मास-वर्ष, ऋतुएं आदि का चक्र देख ''उसके'' सामर्थ्य का दर्शन हमें मिलता है। जीवों के उपयोगी ग्रहों का निर्माण एवं पालन हेतु उन पर प्राकृतिक सम्पदा के भण्डार देख ''उसकी'' दयालुता का आभास पाते हैं। स्वशक्ति से अनन्त सृष्टि के कण-कण का परमाणुओं में विलय अर्थात् ''प्रलय'' और पुनः यथावत् रचना देख ''उसकी'' विराटता पर जब ध्यान जाता है तो श्रद्धा से नतमस्तक हो, अपनी लघुता एवं अल्पज्ञता समझ में आती है। सतत् चल रहे प्रभु-यज्ञ का दर्शन कर गद्-गद् हो अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है और याद आता है कि ओ ! हो! प्रभो ! मैं तो भूल में था अल्पज्ञ अज्ञानी जो ठहरा, घमण्ड से मान रहा था कि यह शरीर, जर, जोरू, जमीन-जायदाद मैंने बनाई है। आपकी रचित

इस विराट रचना का तो मैं एक परमाणु का लाख-करोड़वां अंश भी नहीं हूँ। एक हाथीी के सामने चींटी भी नहीं हूँ। मैं क्या कर सकता हूँ सब आपकी ही व्यवस्था है। प्रभो क्षमा कर दो, अब मैं कभी ऐसा घमण्ड नहीं करूँगा।

(१४) ध्यानस्थ देखते रहें कि चन्द्रमा से सोमरस टपक रहा है। उसे एकत्र कर, मन, जो वहीं बुद्धि और मेरुदण्ड के जोड़ पर है, को तीन आचमन कराकर शांत होते हैं-

शन्नो देवी मंत्र के दूसरे भाग से सोमरस के अन्दर ही अन्दर ध्यान से तीन बार आचमन करें:-

ओ शन्नो देवीरभिष्ठय, आपो भवन्तु पीतये।
आपो भवन्तु पीतये।
आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्त्रवन्तु नः।।

उतावला साधक- विभोर हो कह उठता है- ''हे प्रभो! अब तो चित्त की वृत्तियों को निरोध कर लिया और घमण्ड चूर कर आपके चरणों में आकर चरणामृत भी पी लिया, अब तो दर्शन दो''

अन्तर आवाज- ''नहीं वत्स, अभी तो तूने मात्र वाहरी इन्द्रियों को प्राणायाम से निरोध किया है अभी तो तेरे अन्दर मन में विकार शेष हैं उनको भी दूर कर।''

साधक- ''अच्छा प्रभो ! मैं इसकी भी तपस्या करूँगा।

(१५) गायत्री मंत्र के दूसरे भाग में ''भर्गो'' अर्थात् भूँजना तपस्या करना, जिसका हम संकल्प लेते हैं।

ओं भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि
भर्गो देवस्य धीमहि
भर्गो देवस्य धीमहि

(निर्विकार मनः करने की तपस्या का संकल्प अपनी बुद्धि में दृढ़ करता हूँ)

परन्तु प्रार्थना है कि ''धियो योनः प्रचोदयात्'' आप करते रहना प्रभो।

(१६) प्रत्याहार का दूसरा भाग- मनसा परिक्रमा के छः मंत्रों से

(अ) जिस मन को सोमरस पिलाया है उसे सामने की पूर्व दिशा में ध्यान से लावें एवं मंत्र पाठ करें-

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्या नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।१।।

भाव- सामने की विकास की पूर्व दिशा, जिसका स्वामी अग्नि है। अग्नि मार्ग-दर्शक, पुरोहित, सभी को मिलाने वाला परन्तु किसी से भी लिप्त न होने वाला है। हम ऐसे अधिपति का अनुकरण कर इस लिप्तता के ''असित'' अर्थात् बन्धन रूपी विकार ''मोह'' से

मन को रक्षित करेंगे। सूर्य जो स्वयं सारा दिन सबसे मित्रता करता संध्याकाल "मोह" रहित अपनी यात्रा पर चला जाता है। ऐसे सूर्यरूपी बाण से मन को मोह विकार से मुक्त करेंगे। परन्तु प्रभु यह द्वेष हम आत्मा के छः स्वाभाविक गुणों-इच्छा, द्वेष, ज्ञान, प्रयत्न, सुख और दुःख में से एक है। इसे हम स्वयं दूर नहीं कर पा रहे हैं। आपसे प्रार्थना है कि इसे आप अपने काल-रूपी जबड़े में लेकर समाप्त कर दीजिए, ताकि न हम किसी से द्वेष करें और न हमसे कोई द्वेष करे।

(ब) दाहिनी तरफ दक्षिण दिशा में ध्यान से मन को ले जावें एवं मंत्र पाठ करें-

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।२।।

भाव- दक्षिण समृद्धि की, दक्षता की दिशा, जिसका स्वामी ऐश्वर्यशाली इन्द्र निर्लोभी एवं संतोषी है। उसका अनुकरण कर हम भी "स्तिरश्चिराजी" टेढ़ी-मेढ़ी धोखे की चाल से धन पाने के विकार "लोभ" से मन की रक्षा करेंगे। पितरों के आचरण रूपी बाण से मन के विकार लोभ को अवश्य समाप्त करेंगे। परन्तु प्रभु इस द्वेष को दूर करने में आप सहायता करें ऐसी प्रार्थना है।

(स) पीछे की तरफ पश्चिम दिशा में मन को ध्यान से ले आवें और मंत्र पाठ-

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।३।।

भाव- प्रतीची पीछे की पश्चिम दिशा जिसका अधिपति वरुण देवता है। उसके शीतल एवं अंतर्मुखी कामजित स्वभाव का अनुकरण कर हम पीछे से लगने वाले "काम" रूपी विष "प्रदाकू", जो अजगर की जकड़न के समान हमें विषय-वासना के लिए उकसाता है। उस विकार को भी अन्नरूपी बाण अर्थात् हित-मित ऋतु अनुसार सात्विक अन्न ग्रहण कर एवं आध्यात्मिक अन्न अंतर्मुखी प्रेरणा से शीतल कर काम-वासना को मन से दूर करेंगे। परन्तु प्रभु इस द्वेष को दूर करने में आप सहायता करें ऐसी प्रार्थना है।

(द) उत्तर की तरफ बांयी दिशा में मन को ध्यान से ले आवें और मंत्र पाठ-

उदीची दिग्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।४।।

भाव- उदीची, उत्तर की, प्रकाशमय, उठाने की दिशा जिसका अधिपति "सोम" शांति, दया एवं नम्रता का

देवता है। उसका अनुकरण कर हम अपने अन्दर ''स्वजो'' स्वयं उत्पन्न होते रहने वाले विकार ''क्रोध'' को ''अशनि'' बिजली रूपी बाण के झटके के समान धक्का देकर मन से परे हटा देंगे। अपने आपको क्रोध रूपी मनोविकार से भी मुक्त करेंगें प्रभो परन्तु आप इस द्वेष रूपी हमारे स्वयं के स्वाभाविक दुर्गुण को हमसे समाप्त करने में सहायता कीजिए, अपने कालरूपी जबड़े में लेकर इसे समाप्त कर दें न हम किसी से द्वेष करें न कोई हमसे द्वेष करे।

(य). अब नीचे की तरफ गुदा की ओर मन को ध्यान से ले जावें और मंत्र पाठ-

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।५।।

भाव- ध्रुवा नीचे की, स्थिरता की, प्रकृति से उठने की, दृढ़ता की दिशा जिसका अधिपति विष्णु, आधार, पालक एवं नम्रता का देवता है। अल्पज्ञ मानव अपने आपको सर्वज्ञ मानकर ''कल्माषग्रीवो'' अर्थात् अज्ञानरूपी कल्मष से अपनी गर्दन को लम्बा कर अकड़ाकर घमण्ड से सिर ऊँचा कर लेता है। ऐसी ही लम्बी ऊँची कल्मषमरी गर्दन वाले सर्पो का मर्दन विरोधकर जिस प्रकार विष्णु देवता उन पर आरूढ़ हो गये, हम भी इस झूठे अभिमान के विकार

''अंहकार'' का विरोध रूपी बाण से मर्दन कर मन को निर्मल बनाकर नम्रता का स्वभाव इस पर आरूढ़ कर देंगे। परन्तु प्रभु आप इस हमारे स्वभाविक दुर्गुण द्वेष को अपने जबड़े में लेकर समाप्त कर दीजिए, ऐसी प्रार्थना है। न हम किसी से द्वेष करें और न हमसे कोई द्वेष करे।

(र) इस प्रकार जब हम निर्विकार, अर्थात् पांचों विकारों- मोह, लोभ, काम, क्रोध और अहंकार से विकारमुक्त होकर निर्मल मन बन गये तो भी अस्थिर, अल्पज्ञ और अज्ञानी होने से बार-बार फिसलने लगे, जिससे अधीर होकर हम ऊपर ऊर्ध्वा दिशा में मन को ध्यान से ले जाकर वहाँ के स्वामी ''ब्रह्मा'' को पुकारते हैं। मंत्र पाठ-

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।६।।

भाव- ऊर्ध्वा, ऊपर की उन्नत अवस्था की दिशा पर पहुँचते हैं जिसका अधिपति ''ब्रह्मा'' है। उस सर्वज्ञ, वेदज्ञान दाता, गुरु, सर्वहितकारी एवं सृष्टि का देवता बृहस्पति को हम पुकार कर कहते हैं ''हे प्रभो ! मेरी श्वित्रो की पवित्रता की रक्षा कीजिए। मैं अल्पज्ञ बारम्बार फिसल जाता हूँ। सच में प्रभु करुणानिधि अपने आशीर्वादों

रूपी बाणों की वर्षा से पवित्रता को स्थिर करते हैं। हम गद्‌गद् हो जाते हैं। तब हम तेभ्यो नमो अधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः, सभी को नमन कर उसके वरद हस्त के काल्पनिक स्पर्श मात्र से विभोर हो जाते हैं। पुनः प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! कृपा कर अपने काल रूपी जबड़े में लेकर द्वेष रूपी हमारे स्वाभाविक विकार से भी हमारी मुक्ति करावें बारम्बार यही प्रार्थना है।

बहिरंग विधि का सारांशः

अभी तक हमने यम-नियम का पालन कर, विपश्यना विधि से अंग-प्रत्यंग मांजकर, आसन स्थिर किया। प्राणायाम से शरीर, इन्द्रियों एवं अवयवों में शेष वृत्तियों का भी निरोध कर डाला। तो भी अभी तक ''अन्नमय-कोष'' को उससे सूक्ष्मशक्ति वाले ''प्राणायाम-कोष से शुद्ध ही तो किया। योगश्चित्तवृत्ति निरोध ही तो किया। प्रत्याहार में घमण्ड चूर कर ''मनोमय-कोष'' को निर्मल कर ''निर्विकार-मनः'' भी कर लिया तो भी योग की भाषा में मात्र ''बहिरंग'' ही पूर्ण किया। मुख्य साधना तो अब अंतरंग की होगी, अन्दर ही तो आत्मा को परमात्मा से मिलाना है। पवित्रतम्, आनन्दस्वरूप को मिलाने की तैयारी में अपने आप को स्वच्छ किया तभी इस योग्य बन सके कि उसके पास बैठकर कुछ कह-सुन सकें। इसलिए अब हम प्रसन्नचित्त मुस्कुराहट के साथ अंतरंग में प्रवेश करने के लिए ''उपस्थान'' उसके समीप का आसन ग्रहण करने जा रहे हैं। हम ''बुद्धिमय-कोष'' में धारणा एवं ध्यान कर ''आत्मजाग्रति'' करेंगे, तब कहीं समाधि की अवस्था प्राप्त कर ''आनन्दमय-कोष'' में उस जाग्रत आत्मा से ब्रह्म साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त कर सकेंगे।

साधना

साधना पथ पर बढ़े हम,
बन्धनों से प्रीति कैसी।
शलभ बन जलने चले हैं,
स्वत्व निज खोने चले हैं
दीप सम जलना हमें है,
दाह से फिर भीति कैसी। साधना..... कैसी
सिंधु से मिलने चले हैं,
स्वात्व हवि देने चले हैं।
अटल से मिलना हमें है,
शून्य तट की नीति कैसी। साधना..... कैसी
बीज सम मिटने चले हैं,
वृक्ष सम उगना हमें है।
धर्म ध्वज के स्तम्भ बनना
देह राग की रीति कैसी। साधना..... कैसी
सांधना पथ के पथिक हैं,
बन्धनों से प्रीति कैसी
बन्धनों से प्रीति कैसी
बन्धनों से प्रीति कैसी

धारणा एवं ध्यान का विज्ञानमय कोष अर्थात्—

(१७) प्रभु के आशीर्वाद रूपी वर्षा की सुखानुभूति जब साधक को इतना गद्-गद् कर देती है तो उसके सान्निध्य की आनन्दानुभूति से तो हम धन्य ही हो जायेंगे, निश्चित मोक्ष ही पा जायेंगे। इसलिए हम उपस्थान अर्थात् ''उसके'' समीप बैठने के लिए लालायित हो जाते हैं। शिर में, ब्रह्मरन्ध्र ही में अथवा आज्ञा चक्र पर ध्यान से पहुँचकर-उपस्थान का एक मंत्र पाठ-

उपस्थान मंत्र

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।।१।।

भाव- अभी तक की साधना एवं आपकी कृपा से मेरा अज्ञानरूपी अंधकार ''तम'' समाप्त हो गया और आपसे प्राप्त आशीर्वाद से, रात्रि के तम को समाप्त कर प्रकाश करने वाले सूर्य के समान आपके ज्ञान-प्रकाश का सूर्य मेरे अन्दर प्रकाशित हो गया ''सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमस्'' आनन्दविभोर-अगला मंत्र पाठ-

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।।२।।

भाव- प्रभु सर्वत्र आप ही की महिमा दिख रही है। सभी में व्याप्त आपका वह वेद ज्ञान स्वरूप सूर्य के समान, मेरे में ही नहीं, प्रभु सभी में सारे संसार की जीवात्माओं में प्रकाशित हो रहा है। अर्थात् तू ही तू सारे जग में

व्याप्त हे प्रभु तेरी लीला अपरम्पार है। आभास हो रहा है कि ''ओममय सब जग जानी''। ऐसी धारणा पक्की होते ही ध्यान आता है अगले मंत्र के पाठ पर

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।।३।।

हे जगदीश्वर, हे स्वामिन् ! इस संसार के समस्त पदार्थ आपको ही दर्शाते हैं, आपके ही गुण गाते हैं। ओ हो प्रभो ! याद आया आपने अपने सेवक इन पंच महाभूतों अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और अंतरिक्ष के द्वारा यह चोला बनवाकर मुझे उधार दिया था। याद आया प्रभु मैं तो आपका पुत्र सखा ''आत्मा'' हूँ मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह शरीर तो मात्र आपकी इस प्रकृति के उपभोग के लिए इस आपकी प्रकृति का ही बना हुआ है। जो मुझे आपके काम करने के लिए यहाँ आते समय मात्र साधन के रूप में मिला था। मैं अज्ञानवश इसे ही स्वयं का स्वामी बना बैठा। प्रभु अपनी अज्ञानता समझ में आ रही है। मैं आत्मा हूँ शरीर नहीं, आत्मा हूँ, आत्मा हूँ। आत्मजागृति का निश्चित ध्यान होते ही, ध्यान में अगला मंत्र पाठ करते हैं-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं,
श्रृणुयाम शरदः शतं, प्र ब्रवाम शरदः शतम्,
अदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च
शरदः शतात्।।४।।

भाव- आत्मा जाग्रत है- ध्यान अधिक एकाग्र होता है - उपरोक्त मंत्र के पहले भाग- "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्" से स्मरण होता है कि प्रभु दृष्टा की व्यवस्थानुसार इस प्राप्त शरीर रूपी वाहन की सभी आवश्यकताओं एवं हित की सभी वस्तुओं की आपूर्ति पहले से ही सृष्टि में उपलब्ध करा दी गई थी। आगे और स्मरण आता है कि इस प्राप्त शरीर को सौ वर्षों तक चलाने का ईंधन एवं आवश्यकतानुसार संगी साथी भी पहुँचा दिये थे। मुझ आत्मा को इन संगी-साथी, उपलब्ध साधनों एवं प्राप्त धनैश्वर्य से अलिप्त रहकर, इनके उपभोग मात्र का अधिकार मिला था। आवश्यकताओं से निश्चिंत एवं प्राप्त साधनों से अलिप्त रहकर मुझे सौ वर्ष तक प्रभु कार्य कर वापिस भी जाना था। प्रभु मुझ आत्मा को मेरा साध्य स्मरण हुआ।

यह सभी भूल जाने की अपनी अल्पज्ञता, अज्ञानता एवं भुलक्कड़पन पर पश्चाताप होता है कि किस प्रकार मैंने काम-क्रोधादि विकारों एवं "मैं-मेरे" की लिप्तता में, फंसकर इस सौ वर्ष के लिए प्राप्त बैटरी का अपव्यय कर जल्दी समाप्त कर प्राप्त साधन की आयु भी गंवा बैठा और ''उससे'' मिलाप के साध्य के स्थान पर उसके उपकारों को ही भूल कर उस दयालु से कृतघ्नता भी कर बैठा। इन सबको ध्यानस्थ देखकर निराश भाव से ध्यान में ही

सामने बैठे प्रभु से याचना करता हूं कि प्रभु अब मैं जाग गया हूँ, एक अवसर पुनः दीजिये, अब जो भी शेष जीवन बचा है, मैं आपके कार्यों में लगाऊँगा। ध्यान और एकाग्र होता है- आनन्दकन्द परमानन्द मुस्कराकर "तथास्तु" कहकर पुनः आशीर्वाद देते हैं-- "अदीनाः स्याम शरदः शतं" अब तू किसी के आधीन न रहना

(१८) हम ध्यानस्थ ब्रह्मरन्ध्र अथवा आज्ञा चक्र भृकुटिमें ही शन्नो देवी मंत्र के तीसरे भाग से प्रभु के आशीर्वाद को शिरोधार्य करते हैं-"ध्यान में ही आत्मा को चरणामृत के तीन बार आचमन कराते हैं:-

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयो रभिस्त्रवन्तु नः।।१।।
शंयो रभिस्त्रवन्तु नः ।।२।।
शंयो रभिस्त्रवन्तु नः ।।३।।

(१६) आशीर्वाद स्वरूप प्रकाश पुंज आता है हम ध्यानस्थ ही गायत्री के साथ समाधि में प्रभु सान्निध्य प्राप्त कर आनन्दाभूति में बैठे रहते हैं- ध्यानस्थ पहले गायत्री मंत्र जाप, फिर अपना ओर प्रभु का प्रकाश पुंज, और अंत में मात्र प्रभु का प्रकाश पुंज -

ओं भू र्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेणयं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचो दयात्।।

तत्सवितुर्वरेणयं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचो दयात्।।

भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचो दयात्।।

धियो यो नः प्रचो दयात्
धियो यो नः प्रचो दयात्,
धियो यो नः प्रचो दयात्,
धियो यो नः प्रचो दयात्
धि यो यो नः प्रचो दयात्

धि . यो .. यो .. नः .. प्र .. चो .. द .. या .. त् ...
स्थित प्रज्ञ समाधिस्थ .....
अपनी-अपनी शक्ति, सामर्थ्य एवं साधनानुसार जितने समय तक जो बैठ सके बैठे...।

अनुभूति के भाव

ध्यान एकाग्र होकर जब समाधि स्थिर होने लगती है तब गायत्री के अंतिम भाग की रट धियो यो नः प्रचो दयात् .. आप प्रेरणा देते रहना .. प्रेरणा देते रहना .. भी कुछ काल बाद समाप्त हो जाती है तब न गायत्री .. न कोई रट .. न कोई विचार .. न जाप ... बस एक प्रकाश पुंज जिसके सामने मैं अपना टिमटिमाता दीपक लिए बैठा हूँ . फिर बस दोनों प्रकाश ... ही रह जाते हैं।

दोनों एक-दूसरे से मिलते विलीन होते दिखते हैं .. बस उसके प्रकाश पुंज में मैं और मेरे दीपक के प्रकाश में प्रभु आप ...

नहीं-नहीं प्रभु सर्वत्र तेरा ही तेरा प्रकाश ....
मेरे प्रकाश में भी तूं और तेरे ही प्रकाश में मैं .....

सारा जग ही तेरा प्रकाश, तू ही सारे जग में व्याप्त
तेरा ही तेरा प्रकाश ....
तेरा ही तेरा प्रकाश ....
पवित्र..शीतल..शुभ्र..स्फटिक..स्वर्णिम..आभामय ..
यह मिश्रित प्रकाश पुंज - "ओ३म्" की अनुभूति
सभी की अपनी-अपनी साधना एवं
सामर्थ्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होगी ....
बस यही है अनन्दानुभूति ... किए जा इसका अमृतपान
अंत में न सांस का, न श्वास का, न प्रश्वास का, न शरीर का पता
बस आनन्द ही आनन्द - उसके सान्निध्य का -
उसकी गोद में बैठने का - आनन्द .....
स्थिति-प्रज्ञ की यही समाधिस्थ अवस्था है
जब समाधि टूटने लगे ....

(२०) तब हाथ जोड़कर, बन्द आंखों में ही देव दयानन्द के दिल के उद्‌गार को अपने शब्दों में अपने माता-पिता स्वामी सखा से कहो:-
उच्चारण करें-

अथ समर्पण

हे ईश्वर दयानिधो! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षणां सधः सिद्धिर्भवेन्न।।

हे दयानिधे प्रभु! अब तो मैंने आपकी कृपा प्राप्त कर ली, जप कर लिया, उपासना कर ली और आपके आदेशों को "कर्मणा" पालन कर वैसे ही कर्म भी करने लगा हूँ अब तो मेरा अभीष्ट "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष" मुझे प्राप्त करा दो और अधीर होकर अति विनम्रता से कहते हैं, प्रभो! अब और देर न करो "सधः सिद्धिर्भवेन्नः" तुरन्त दे दो और आँखें बन्द में ही नमन करते हैं।

(२१) हाथ जोड़े हुए ही आँखें बन्द में ही धन्यवाद स्वरूप प्रभु को नमस्कार करें :-

।।अथ नमस्कार-मन्त्र।।

ओ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।।।य. अ. १६ मन्त्र ४१।।

सर्व सुखकारी प्रभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम,
सुख स्वरुप महा विभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम,
शान्ति कर्ता हे प्रभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम,
सर्व मंगल हे विभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम,
सकल मंगलकर प्रभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम,

नित्यः कल्याणी विभो! मैं कर रहा तुमको प्रणाम।

(२२) अब तक सूर्योदय हो चुका होगा। सूर्य की किरणें सीधी आँखों पर न पड़ें, इसलिए नमस्कार करने के बाद, आँखें बन्द में ही, जोड़े हुए दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में रगड़कर, आँखें गरम हथेलियों से ढक लें। हथेलियों के अन्दर ही मिचमिचाते हुए आँखें खोल लेवें तब हाथ हटावें। अन्यथा इतनी देर बन्द आँखों पर सूर्य की सीधी किरणों से हानि पहुँच सकती है।

(२३) अब पैर सीधे करके धीरे-धीरे हिलावें, पैरों का रक्त-संचार ठीक हो जाने पर उठ जावें। उठकर हो सके तो हल्के से कुछ सहज योगासन कर लेवें। "सूर्य-नमस्कार" इस समय सूर्य के सामने होने से अति लाभकारी सिद्ध होता है।

(२४) तभी दैनिक यज्ञ, हवन, अग्निहोत्र आदि करें अथवा अपनी दैनिक दिनचर्या प्रारम्भ करें।

(२५) प्रभु निश्चित सफलता देंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।
ओं शान्ति... शान्ति... शान्ति।।

उत्तरोत्तर अभ्यास से शनैः शनैः साधना की उच्चतम अवस्था

(१) प्रारम्भ के अभ्यास में मंत्र पाठ कण्ठस्थ होने तक, मंत्रों का उच्चारण करें। मंत्र याद हो जाने के बाद अर्थों का ध्यान कर मन में मंत्रोच्चारण करें। मन भागने लगे तो पुनः एक दो बार मंत्रों का उच्चारण करने लगें। इस प्रकार बार-बार मन को साधना में लगाए रहें।

(२) मंत्र एवं मंत्रार्थ समझ लेने के साथ-साथ इस पुस्तिका के अनुसार भावना से साधना में मन लगाए रहें।

(३) मंत्र, अर्थ एवं भावना सध जाने के कुछ काल बाद, मंत्र मन में आते ही भावना का स्वयंमेव ध्यान आने लग जावेगा। इस प्रकार मन व्यस्त रहकर स्वयंमेव भावनानुसार क्रिया में लगा रहेगा। अब साधना में आनन्द आने लगेगा।

(४) शनैः-शनैः अभ्यास से जब हम मंत्रों की भावनानुसार जिस मंत्र की क्रिया को अपने कर्म में, जीवन में ढाल लेते हैं और अपने आपको तदनुसार शुद्ध कर लेते हैं, तब समझना चाहिए कि हमें वह मंत्र सिद्ध हो गया।

(५) इस प्रकार यम नियम के पालन, प्राणायाम से इन्द्रियों की वृत्ति का निरोध कर "योगश्चित्त वृत्ति निरोध" कर; प्रत्याहार में अधमर्षण एवं मनसा परिक्रमा के मंत्रों की सिद्धि भी प्राप्त कर लेवें। तभी हम बहिरंग समाप्त कर अंतरंग में प्रवेश कर अंतर्मुख होकर आत्म-जाग्रति कर सकेंगे।

(६) आत्म जाग्रति की साधना में बहुत बाधाएं, शत्रुउपस्थित होते हैं। योग दर्शनानुसार नौ शत्रु इस प्रकार हैं-
व्याधिस्त्यान संशयप्रमादालस्य विरति भ्रन्तिदर्शनालब्ध, भूमिकत्वानवस्थित्वानि चित्त विक्षेपास्ते अन्तरायाः।। यो. १/३०

व्याधि- ज्वरादि पीड़ा, स्त्यान- संध्याआदि जानबूझकर न करना, संशय- दुविधा, प्रमाद- यमनियम संकल्प आदि भूल जाना, आलस्य- अपुरुषार्थी, अविरति- वासना बनी रहना, भ्रांतिदर्शन- उल्टा ज्ञान, अलब्धभूमिकत्व- एकाग्रता या समाधि प्राप्त न होना और अनवस्थितत्व- अस्थिर चित्त के कारण एकाग्रता अथवा समाधि पुनः-पुनः छूट जाना। । इन शत्रुओं के अतिरिक्त कुछ क्लेश भी हैं जो दूर करने पड़ते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशाः
पंचक्लेशाः ।।यो. २/३

सभी क्लेशों का मूल क्लेश अविद्या अर्थात अज्ञान है, तो अगर हम सत्य वेद ज्ञान प्राप्त करने का

स्वाध्याय करते रहे तो क्लेशों से मुक्त हों और उपरोक्त शत्रुओं से बचकर साधना करें, तभी आत्मा जाग्रत होगी।

(७) इस जाग्रत आत्मा से ही परम-आत्मा का ब्रह्म साक्षात्कार करने, उससे बातचीत करने, अपनी व्यथा सुनाने अथवा उसकी प्रेरणा प्राप्त करने की अनुभूति पा सकेंगे।

(८) आत्म-साक्षात्कार में जब यह विवेक आ जाता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा क्या उद्देश्य है तब चित्त कैवल्यभिमुख होकर विवेकज ज्ञानमार्ग में पहुँचता है।

(९) उत्तरोत्तर अभ्यास से जब समाधि स्थिर होने लगती है एवं ऊँची अवस्था में बढ़ने पर पहले हमें विवेक ख्याति फिर अपरवैराग्य पुनः सम्प्रज्ञात समाधि तत्पश्चात परवैराग्य और अंत में असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था होती है। इसके भी अभ्यास से जब असम्प्रज्ञात समाधि में स्थैर्य होने लगे तब कैवल्य की प्राप्ति होती है। संक्षेप में ये समाधि की उत्तरोत्तर बढ़ती अवस्थायें हैं।

(१०) इस अंतिम अवस्था के जनक जैसे कैवल्य प्राप्त "विदेह" युगपुरुष योगी श्रीकृष्ण और दयानन्द बनते हैं।

(११) इस प्रकार की आनन्दानुभूति अगर हमें कई जन्मों में भी मिले तो भी लाभदायक ही है क्योंकि ऐसी आनन्द की अवस्था का काल इतना अधिक है कि जन्म-मरण के चक्कर से छूटने के लिए हम लालायित हो उठते हैं। यह मोक्ष का काल वेदानुसार सृष्टि की ३६००० बार उत्पत्ति और प्रलय जितना समय है अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षों तक जीवात्मा मुक्ति का सुख भोगकर पुनः नये कल्प में किसी श्रीमान् के गृह जन्म लेता है।

(१२) इसलिए मेरा सुझाव एवं आप सभी से प्रार्थना यह है कि अगर इस साधना का व्रत या संकल्प के पालन में कभी किसी कारणवश कोई कमी आ जावे, रुकावट आ जावे या कभी उतावलेपन में अथवा सफलता की आकुलतावश निराश हो जावें, तो भी इस संध्या से योग के अभ्यास को भूल से भी कभी नहीं छोड़ें। हर सफलता प्रयत्न से ही सम्भव है "करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान।"

अगर अभ्यास छूट भी जाए या व्रत टूट भी जाए तो भी पुनः लगे रहें। छोटी-छोटी सी संसारिक सफलताओं के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है फिर यह तो अल्पज्ञ आत्मा का उस सर्वज्ञ परमात्मा से मिलने का महान् कार्य है। जन्म-जन्मान्तरों से जिसके लिए आत्मा भटक रही है। इस महान् कार्य के लिए देर तो लगेगी, पर सफलता अवश्य मिलेगी। अभी नहीं, इस जीवन में नहीं तो अगले किसी मनुष्य योनि में। किया हुआ अभ्यास निष्फल कभी नहीं जाता, अगले मनुष्य जीवन में सहायक होगा और जितना साध चुके हैं और उससे आगे बढ़ने का संयोग अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार धर्म बन्धुओं एवं पुण्य आत्माओं यह निश्चय मानो कि एक न एक दिन अपना अभीष्ट हमें प्राप्त हो ही जायेगा। सतत एवं नियमित अभ्यास से ही धीरज का मीठा फल प्राप्त होता है। प्रभु सभी को ऐसी प्रेरणा दे कि हम सभी "उसके" कृपा पात्र बन सकने में सफल हो सकें।

अंत में झोली फैलाकर आप सभी के समक्ष उपस्थित हुआ हूँ आशा है निराश नहीं करेंगे। एक बहाना- मीठा गरल- हम सभी सहज ही पीते चले आ रहे हैं कि "अभी तो बचपन है, जवानी की मौज करके गृहस्थाश्रम की गाड़ी को जर, जोरू, जमीन आदि भर लेने दो, तब जीवन की संध्या में यह संध्या, साधना अथवा सिमरन कर लेंगे।" इस मीठे विष-रूपी बहाने को कृपया मेरी झोली में डालकर कृतार्थ करें और बचपन एवं जवानी से ही इस संध्या के

चुम्बक से जुड़ जावें तो निश्चित माने कि जीवन की संध्या में मोह-ममता के चुम्बक रूपी बेल से, पके खरबूजे के समान स्वयंमेव छूट जावेंगे। अन्यथा जीवन की संध्या में न शरीर साथ देता है और न ही मोह-ममता का चुम्बक पीछा छोड़ता है। इस प्रकार हम बिना संध्या, साधना अथवा सिमरन किये ही काल रात्रि के अंतराल में विलीन हो जाते हैं।

अगर मेरी झोली आप सभी के उपरोक्त सात्विक दान से भर गई तो अपने जीवन की संध्या में इस संध्या को जन-जन तक पहुँचाने की अभिलाषा पूर्ण होती देख एवं आपके जीवन को सफल बनता देख अपने जीवन को भी सफल समझूँगा।

भगवन्त मुनि

साधना के अन्त में ईश्वर का धन्यवाद!

हमने आनन्द पाया है, तेरा धन्यवाद प्रभो ।।ध्रुव।।
सत्य अहिंसा का पालन करके
चोरी जारी संग्रह तज के
सदाचार बनाया है ।।१।। तेरा धन्यवाद प्रभो!
आशा को मार के आसन जमाया,
तापों से तप के तन को तपाया।
मानापमान भगाया है ।।२।। तेरा धन्यवाद प्रभो!
प्राणायाम से प्राणों को रोका,
प्राण से मन का नाता जोड़ा।
इन्द्रिय निग्रह बनाया है।।३।। तेरा धन्यवाद प्रभो!
हृदय में धारण देश बनाया,
ध्यान में ध्येय को लक्ष्य बनाया।
मन से जाप जपाया है ।।४।। तेरा धन्यवाद प्रभो!
स्थिर मन ने ज्योति जगाई,
बुद्धि में निश्चलता है समाई।
आनन्द आत्मा में आया है।।५।।तेरा धन्यवाद प्रभो!
ईश दया से जीवन पाया,
गुरूवर, कृपा से योग लगाया।
'दिव्य' आनन्द छाया है।।६।। तेरा धन्यवाद प्रभो!